सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ

***प्रो0 एम0 पी0 सिंह एवं ** रमाकान्त सिंह,**
***** शोध निर्देशक, इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
****** शोध छात्र

शोध सारांश

भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा इतिहास के प्रारम्भ से ही दिखाई देती है। वस्तुतः इसे भारतीय आत्मा को सन्दर्भित करने वाला प्रत्यय माना जा सकता है। प्राचीन कालीन साहित्य में इस प्रकार के स्वर अनेक स्थानों पर प्राप्त होते है। भारत की एक निश्चित सीमाओं का उल्लेख करते हुए उसकी सन्तति को भारती कहना तथा विभिन्न प्रकार की भिन्नताओं के मध्य एक समान अनुप्राणित करने वाली भावनाओं के रुप में इसकों देखा जा सकता है। वर्तमान काल में इस अवधारणा के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाने लगा है, जिसके कारण एक विशेष बौद्धिक वर्ग के द्वारा इसे हिन्दू संस्कृति से जोड कर देखा जाने लगा है। वास्तविकता यह है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को राष्ट्रवाद के एक प्रकार के रुप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिसका किसी धर्म अथवा संप्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। यह मानवता के उच्चतम शिखर के उद्घोष के रुप में देखा जाना चाहिए। इस अवधारणा में धर्म, संप्रदाय, भाषा, जाति, प्रदेश इत्यादि के रुप में किसी प्रकार के विभाजन का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भारतीय संस्कृति पर आधारित इस प्रकार के राष्ट्रवाद को अपने उद्भव काल से ही प्रश्रय देती रही है तथा इसे राष्ट्रीय उत्थान के महत्वपूर्ण कारक के रुप में स्वीकार करती है।

समकालीन विश्व में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावी अवधारणा के रुप में विकसित हुआ है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति के मूल तत्त्वों को अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए एक अनिवार्य तत्व के रुप में देखता है। यह मानवता के विकास का प्रमुख पोषक तत्त्व है। राष्ट्र व्यक्ति एवं मानव जाति के मध्य यह एक अनिवार्य शर्त के रुप में स्वीकार किया जाता है। राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण स्वतंत्रता, सहिष्णुता, समानता एवं व्यक्तिगत अधिकारों के उदार मूल्यों के संगत में होना चाहिए। पाश्चात्य विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल राष्ट्रीय पहचान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य मानते हैं। उनका मानना है कि एक अर्थपूर्ण एवं स्वायत्त जीवन के लिए तथा उदार एवं लोकतांत्रिक राजनीति के लिए राष्ट्रीय अस्मिता का बना रहना बहुत ही आवश्यक है। महर्षि अरविन्द लिखते है कि भारत में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास होना चाहिए, जिसकी आत्मा हिन्दुओं के करीब हो।[1] किरणचंद बंदोपाध्याय ने 1873 में अपने नाटक भारतमाता में भारत को माता के रूप में चित्रित किया था। विश्व में किसी राष्ट्र ने अपने राष्ट्र को माता का स्वरूप नही दिया। हमारी पुरातन संस्कृति में कहा गया है कि धरा ही हमारी धरोहर है, घटित इतिहास हमारी विरासत है। भारत की प्रकृति ही उसकी संस्कृति है और जो यह संस्कृति है, वही भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है।[2]

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को एक सशक्त रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा किया गया है। इस सम्बन्ध में जगन्नाथ जोशी कहते है कि "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ किसी पंथ से जुड़ा नहीं है। संप्रदाय से जुड़ा नहीं है। वह तो राष्ट्र की मिट्टी से जुडा है। यह धारणा ही निरोगी राष्ट्र जीवन का निर्माण करेगी.....। वह आगे कहते है कि भारत का साहित्य, शिल्प, संगीत, पोशाक, भाषा, रीति रिवाज इन सबमें ही राष्ट्र जीवन का दर्शन होता है। यह सांस्कृतिक तत्त्व

ही राष्ट्र का बोध कराते हैं। हमारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संकुचित नहीं है। हम किसी को भी अलग अथवा दूर रखने वाले नहीं है।[3]

भारत में प्राचीन काल से ही एक प्रकार की सांस्कृतिक एकता पाई जाती थी। सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या के आचार विचार, धर्म, संस्कृति एक सूत्र में बंधे हुए थे तथा वह सभी भारत को एक राष्ट्र के रूप में ही प्रदर्शित करते थे। धर्म से प्रभावित भारतीय संस्कृति ने इस ऐक्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक भूखण्ड माना जाता था। भारतीय आत्मा की सृजनात्मक अभिव्यक्ति सर्वप्रथम दर्शन, धर्म व संस्कृति के क्षेत्रों में ही हुई। विविधताओं को स्वीकार करने वाले इस देश में एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य संस्कृति के द्वारा ही किया गया है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर मंथन आज भी जारी है। भारत सनातन काल से तत्त्व खोजी, सत्य अभीप्सु राष्ट्र रहा है। तर्क, प्रतितर्क, विचार, विमर्श हमारे राष्ट्र जीवन की सनातन परम्परा है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास से समाज का विकास नहीं होता, जब तक कि संस्कृति का ज्ञान नई पीढ़ी को नही होगा। हमारी परम्परा, विचार शैली, विचार ज्ञान को हस्तांतरित करने में संस्कृति, समाज सुधारकों, संतों, रचनाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय वसुधैव कटुंम्बकम की अवधारणा को विश्व ने स्वीकार किया है। इस पंथनिरपेक्षी आध्यात्मिकता एवं सदा लोकतंत्री जन – गण – मन व्यवस्था वाली सनातन संस्कृति से यह राष्ट्र है, इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रभाव ही भारत का मूल विचार है।[4]

भारत में राष्ट्रवाद को कभी भी किसी पर थोपा नही गया तथा न ही किसी को उसके लिए प्रताड़ित किया गया। भारतीय राष्ट्रवाद में किसी सम्प्रभु राष्ट्र को छीनने का भाव निहित नही है, वरन् यह वैश्विक परिवार का राष्ट्रवाद है। वास्तव में यह राष्ट्रवाद हमारे संस्कारों में निहित है। भारत के संकल्प मंत्र में भारत भूमि को जोड़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति संकल्प को प्रस्तुत किया है –

जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तेक देशान्तरे,
गते अमुक क्षेत्रे, अमुक नगरे आदि आदि।[5]

अन्त में संकल्पकर्ता को उसकी कुल परम्परा का स्मरण कराया जाता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के लोक शिक्षण की इतनी सरल एवं प्रभावी प्रक्रिया अन्य कही पर प्राप्त नही होती है। इस प्रकार भारत नाम से अभिहित विशाल भूखण्ड की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार एकायक नही हुआ, वरन इसका निर्माण हजारों वर्षो में हुआ तथा इसका जुडाव सांस्कृतिक था तथा धर्म इसका आधार था। इस प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर उसके प्रत्येक कोने में तीर्थस्थलों की स्थापना कर भारत को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोया गया। अथर्ववेद के सूक्त "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या" अर्थात यह पृथ्वी मेरी माता है तथा मै इसका पुत्र हूँ को विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत कहा जा सकता है। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद वैश्विक भावना रखता है तथा वैश्विक बहुलता को स्वीकार एवं उसका सम्मान करता है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक संस्कृतिवाद के अन्तर्गत भारत मे विकसित एक ही भारतीय संस्कृति का अस्तित्व स्वीकार करता है। भारत में विकसित अन्य विदेशी संस्कृतियों के सम्बन्ध में उनका मानना है कि उनकों भारतीय संस्कृति में विलीन होना होगा। पुरूषोत्तम दास टंडन जैसे राष्ट्रीय नायक इसी प्रकार के विचार के पक्षपाती थे। इस विचारधारा के पक्षपाती संस्कृति को ही भारत आत्मा मानने के कारण भारतीयता की रक्षा एवं विकास करने में सक्षम हो सकते है।[6] वर्तमान समय की आवश्यकता यह है कि सास्कृतिक राष्ट्रवाद के साथ अपने पूर्ण क्षमता के साथ जुडकर इसके गौरव एवं वैभव के साथ खड़े हो, जिससे, राष्ट्र विघटन जैसी दुघर्टनाओं को रोका जा सकता।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि विविधता के साथ रहना तथा एक दूसरे के साथ एकता एवं सामंजस्य का स्वरूप प्रदर्शित करना प्रमुख है। यद्यपि समय समय पर इस विविधता में एकता को लेकर गंभीर बहस एवं विवाद की स्थिति उत्पन्न होती रहती है। पंथ निरपेक्षता के विरोध में हिन्दुत्व को खड़ा किया जाता है। वास्तव में यह दिखाया जाता है कि दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। जो कि निश्चित रूप से सत्य नहीं है। पंथ निरपेक्षता राज्य व्यवस्था की वह अवधारणा है, जिसमें सभी धमां का समान रूप से सम्मान किया जाता है तथा धार्मिक आस्थाओं के आधार पर उनके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। दूसरी तरफ हिन्दुत्व मानव जीवन का विराट् दर्शन प्रस्तुत करता है। यह संपूर्ण सृष्टि को समग्र रूप से समझने की दृष्टि है, जो कि इहलोक तथा परलोक दोनों के लिए मार्ग को दिखाता है। यह व्यक्ति तथा समाज एवं भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं के मध्य एक प्रकार का समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है। इस प्रकार यह उदार, उदात्त, मुक्तिगामी स्वरूप में है।[7]

इस प्रकार हम हिन्दुत्व एवं भारतीयता में किसी प्रकार का अंतर नहीं पाते हैं, क्योंकि दोनों एक ही प्रकार के चिंतन को अभिव्यक्त करते है। दोनों ही इस बात पर जोर देते है कि भारत सभी का है और सभी भारत के है। यदि इसकों व्यापक सन्दर्भ में देखा जाए तो हम कह सकते है कि सभी भारतीयों को समान अधिकार है तथा उनकी जिम्मेदारियाँ भी समान है। यह हमारी सामूहिक राष्ट्रीय संस्कृति को दर्शाता है। इसमें धार्मिक तथा गैर धार्मिक तत्व समान रूप से समविष्ट है। शताब्दियों से यह दोनों तत्व समान रूप से हमारी राष्ट्रीय पहचान को परिलक्षित करते आए हैं।[8] हिन्दुत्व कोई धार्मिक अथवा राजनीतिक अवधारणा नहीं है, वरन जीवन का उदात्त एंव उन्नत मार्ग है। यही भारतीयता है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को रेखाकिंत करते राष्ट्रीय स्वयं सेवक के प्रखर वक्ता एवं भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ राजनेता लालकृष्ण आडवाणी कहते हैं कि "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सहज रूप हिन्दुत्व के रूप में दिखाई देता है। हिन्दुत्व पंथ अथवा मजहब नहीं है तथा न ही किसी धार्मिक राज्य की स्थापना का प्रयास, वरन् इसमें राष्ट्रत्व, सत्त्व समाहित है। यह राष्ट्र को एकजुट करने वाली सुदृढ़ शक्ति है। यह हमारे हजारों वर्षो के हमारे अनुभवों की सामूहिक बुद्धिमत्ता का प्रतीक है।"[9] सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की इस भावना को और अधिक विश्लेषित करते हुए आडवाणी जी पं0 जवाहर लाल नेहरू के भाषण का एक अंश प्रस्तुत करते हैं, जो कि 1961 ई0 में मदुरई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में दिया था। इसमें उन्होंने कहा था कि –

"भारत पिछली अनेक शताब्दियों से तीर्थस्थलों के रूप में बर्फीली हिमालय पर्वतमाला में बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा अमरनाथ से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तृत तीर्थों के दर्शन किए होंगे। इन तीर्थों में ऐसी क्या विशेषता है, जो लोगों को दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर से दक्षिण की तरफ यात्रा करने को प्रेरित करती है। यह एक देश एवं संस्कृति की भावना है और इस भावना ने हम सबको जोड़ रखा है। भारत को एक महान देश समझने की अवधारणा युगों युगों से चली आ रही है। हमारे यहाँ विभिन्न राजनीतिक स्वरूप के अलग अलग राज्य रहे है, हम विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोलते है, फिर भी यह मृदुल बन्धन हमे अनेक रूपों में इकट्ठा बाँध कर रखता है।"[10]

इस प्रकार हमारे राष्ट्रवाद का आधार हमारी संस्कृति एवं विरासत है। हमारे लिए ऐसे राष्ट्रवाद का कोई अर्थ नहीं है, जो हमें वेदों, रामायण, महाभारत, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, आदि गुरू शंकराचार्य, गुरू नानकदेव, महाराणा प्रताप, शिवाजी महाराज, रानी लक्ष्मीबाई, स्वामी दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, एवं असंख्य अन्य राष्ट्रीय अधिनायकों से अलग करता हो। यह राष्ट्रवाद ही हमारा धर्म है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो हिन्दुत्व एक एकात्मवादी सिद्धान्त है। यह भारत की आत्मा की रक्षा एवं उसे पुनः ऊर्जावान बनाने का

सामूहिक उद्यम है। यह एक ऐसा सकारात्मक प्रयास है, जो किसी भी वर्ग को दूसरे की कीमत पर लाभ उठाने की शर्मनाक कोशिशों को रोकता है। हिन्दुत्व अनुशासन एवं आत्मानुशासन है।[11] भारतीय राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक अवधारणाओं में निहित अनंत शक्ति को मान्य करके ही राष्ट्र को एकजुट किया जा सकता है। यह बात गौण है कि आप इस अवधारणा को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, हिन्दुत्व के रूप में अथवा भारतीयता के रूप में। मूल तत्व तो दोनों का एक ही है और वह है इसका सांस्कृतिक रूप।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े वरिष्ठ राजनेता राजनाथ सिंह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को राष्ट्र को जोड़ने के मंत्र रूप में देखते है। उनका मानना है कि भारत एक राष्ट्र के रूप में सदियों पूर्व विकसित हुआ था। उसकी यह पहचान अंग्रेजों के आने तक रही। अंग्रेजों ने भारत की इस सांस्कृतिक पहचान को धुँधला करने का प्रयास किया तथा यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि भारत की पहचान एक राष्ट्र के रूप में कभी भी नहीं रही तथा अंग्रेजों के आने के बाद यह एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है। वास्तव में राष्ट्र एक विशुद्ध सांस्कृतिक अवधारणा है। राज्य की सीमाओं को लाँघकर उत्तर के हिमालय से लेकर दक्षिण के सागर तट तक राष्ट्र की भावना सदियों पूर्व से विद्यमान रही है। हमारा वैचारिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से ओत प्रोत रहा है। इस देश में राजनीतिक एकता से अधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एकता रही है।[12] भारत सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र भू – सांस्कृतिक राष्ट्र है। जिन देशों में एकता राजनीतिक कारणों से थी, वे समय के साथ बिखर कर अलग – अलग हो गए।

यदि इसकों वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो राष्ट्र का स्वर सांस्कृतिक एकता है। अगर सभी भारतीय भारत की मूल सांस्कृतिक एकता की अनिवार्यता को समझकर एक पंक्ति में आ जाए, तो कोई विभेद ही नहीं रह जाएगा। इस स्थिति में सबकी विरासत एक होगी तथा भारतीय एकता के प्रतीक भारतमाता, वंदेमातरम्, भारत के महापुरूष, साधु संत, सूफी फकीर सब के सब साझें होंगे। मेरा और तेरा के स्थान पर हमारा शब्द का प्रयोग होगा। आज नही तो कल निश्चित ही भारतीय राजनीति के विभाजक तत्त्व भारतीय संस्कृति की सर्वव्यापी सत्ता के समक्ष पराभूत हो जाएँगें।

राष्ट्र एक भावात्मक स्वरूप है, रूप नहीं। रूप बाहर बाहर होता है, जबकि स्वरूप आन्तरिक चेतना का नाम है। बाहरी रूप में यह देश भूमि, जनता, एवं राजव्यवस्था का योग है। परन्तु आन्तरिक रूप में यह एक दिव्य चेतना है। चेतना का यह साक्षात्कार युगों – युगों से सामूहिक चिंतन का फल है। यही भारत की संस्कृति है। धर्म यहाँ बन्धकारी नही है। सारे पंथ अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं। भारत का धर्म आत्मनुशासन देता है। इसी भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को रेखाकिंत करके प0 दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की अवधारणा को हमारे समक्ष रखा। भारत की धमनियों में एक अदृश्य चेतना बहती है, जिसके कारण करोड़ों व्यक्ति एक ही स्थान पर एकत्र हो जाते है। यह भारत के राष्ट्र होने की पहचान और उसकी चेतना है। इसका आशय मात्र यह है कि भारत एकमात्र ऐसा राष्ट्र है, जो अपनी अमूल्य सनातन सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण ही एकसूत्र में बँधा हुआ है। इस चेतना को कोई कैसे भुला सकता है, अपनी जड़ों से कटकर कोई समाज किस प्रकार जीवित रह सकता है।[13] भारत की संस्कृति जिन मूल्यों एंव आदर्शो की वकालत करता है, वे संसार के ऊँचे मानदण्ड है।

हिन्दुत्व की सही परिभाषा एवं उसके विस्तृत अर्थ को यदि सही परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके तो किसी प्रकार के विवाद की संभावना ही नहीं है। वीर सवारकर ने हिन्दुत्व का निचोड़ संस्कृत की इन दो पंक्तियों में रखा है –

आसिन्धु सिन्धु पर्यता यस्य भारतभूमिकाः।
पितृभः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।।[14]

अर्थात प्रत्येक वह जो सिंधु से समुद्र तक विस्तृत भारत भूमि को साधिकार अपनी पितृभूमि एवं पुण्यभूमि मानता है, वह हिन्दू है। पितृभू का अर्थ है अपने पूर्वजों की कर्मभूमि तथा पुण्यभूमि का अर्थ है जो जिस दर्शन को मानते है, उस दर्शन का प्रतिपादन करने वाले दार्शनिकों के कार्य, निवास एवं संस्कृति द्वारा पवित्र बनी भूमि।

भारत एक राष्ट्र है तथा उसकी अपनी एक संस्कृति है। यदि भारत के लोग इस सत्य को स्वीकार नही करते तो राष्ट्र की प्रभुसत्ता एवं अखंडता खतरें में पड सकती है। भारत की सांस्कृतिक एकता का अर्थ यह नही है कि भारत में अनेक संस्कृतियाँ है, वरन् इसका अर्थ है कि इस राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति है और वह अनेकता को प्रश्रय देती है। भारत में अगर आज सर्वधर्म समभाव है, तो वह कम से कम पाँच हजार वर्ष की हिन्दू सभ्यता के मूल्यों एवं परम्पराओं के कारण है। जिसमें मजहब के नाम पर नागरिकों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव करने की परम्परा नहीं रही है। ईसाई, यहूदी, इस्लाम जब भारत की धरती पर आए तो हिन्दू सभ्यता के द्वारा उनका स्वागत किया गया। राजाओं ने मस्जिद एवं गिरजाघर बनाने के लिए भूमि प्रदान किया। ऐसा इसलिए संभव हो सका क्योंकि हिन्दू सभ्यता में दूसरों के लिए भी वैसी ही गुंजाइश और जगह है, जैसा कि यहाँ पैदा हुए पंथों एवं संप्रदायों के लिए हैं। भारत सनातन से एक हिन्दू राष्ट्र है और हिन्दू राष्ट्र में किसी एक मजहब अथवा पंथ की अवधारणा कभी नहीं की गई है। विचारो की विविधता हिन्दुत्व का आधार है।[(15)] भारत मे कभी भी पंथ पर आधारित राज्य की कल्पना नही की गई है। जब हम भारत में पंथ पर आधारित राज्य की कल्पना का त्याग करते है, तो उसका एकमात्र कारण यह है कि भारत एक जीवांत व परम्परागत रूप से हिन्दू संस्कृति पर आधारित राष्ट्र है।

इस प्रकार विभिन्न विश्लेषणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद की अवधारणा मूलतः सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, सामूहिक तथा विवेकपूर्ण, सनातन धर्म पर आधारित है। इसका मूल उसकी संस्कृति है, जो कि शेष विश्व मे प्रचलित राष्ट्र की अवधारणा में सर्वथा अनुपस्थित है। इस प्रकार के संस्कृतिमूलक राष्ट्र भाव को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के द्वारा प्रश्रय दिया जाता है। भारत के प्राचीनतम साहित्य में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। इसकी प्रमुखता सांस्कृतिक तथा सामाजिक तो है ही साथ ही राजनीतिक एवं आर्थिक भी है। प्रकृति में यह विकासवादी है न कि किसी विशेष परिस्थिति की उपज है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा राष्ट्रीय हितों को मात्र आर्थिक सरोकारों के समतुल्य करके नही देखती। इसके विपरीत मानवीय सरोकारों एवं हित इसके लिए अधिक मायने रखती है। यह मात्र राजनैतिक व भू – स्थैतिक एकता एवं संप्रभुता को आधार नहीं मानती, वरन् सांस्कृतिक एकता को उसका प्रमुख आधार मानती है। यह कभी भी सांस्कृतिक भिन्नता को राष्ट्र के लिए खतरा नही मानती है। यह भिन्न भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अस्तित्व की भावना के आधार पर यह राष्ट्र मूल्य को स्वीकार करता है। इसके सांस्कृतिक मूल्य ही इसे अखंड राष्ट्र के रूप में पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक सूत्र में पिरोने का कार्य करते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ0 कृष्णदत्त द्विवेदी (सं0) भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप एवं विकास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1990, पृ0 सं0 56

(2) प्रभात झा (सं0), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 सं0 81 ,

(3) अभय प्रसाद सिंह, राष्ट्रवाद का भारतनामा, ओरियंट ब्लैकस्वान्, 2017, पृ0 सं0 53

(4) चेतना विचारधारा, पत्रिका, सान्ध्य संस्करण, गोरखपुर, अप्रैल, 1, 2000, पृ0 सं0 4

(5) प्रभात झा (सं0), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 सं0 85

(6) प0 व्रजबल्लभ द्विवेदी, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्, वाराणसी, 2004 पृ0 सं. 46
(7) पांचजन्य, साप्ताहिक, तरूण विजय, (सं0) सांस्कृतिक भवन देशबन्धु मार्ग, नई दिल्ली, 2001, पृ0 सं0 4
(8) हो0 वा0 शेषाद्रि, कृत रूप संघ दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 सं0 215
(9) अभय प्रसाद सिंह, राष्ट्रवाद का भारतनामा, ओरियंट ब्लैकस्वान्, 2017, पृ0 सं0 76
(10) नीरजा माधव, अर्थात राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2021, पृ0 सं0 67
(11) सुरेश भय्याजी जोशी, हमारा सांस्कृतिक चिंतन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृ0 सं0 52
(12) दैनिक जागरण, राजनाथ सिंह का लेख, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद,हिन्दी दैनिक पत्रिका, लखनऊ संस्करण, नवम्बर, 2016, पृ. सं0 7
(13) प्रभात झा (सं0), सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ0 सं0 123
(14) प्रो0 श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, डॉ0 सच्चिदानन्द मिश्र, भारत में राष्ट्रवाद के बिम्ब, अंकित प्रकाशन, 2018,
(15) पांचजन्य, साप्ताहिक, तरूण विजय, (सं0) सांस्कृतिक भवन देशबन्धु मार्ग, नई दिल्ली, 2001, पृ0 सं0 4

❑